उत्तर-औपनिवेशिक वातावरण में वि-उपनिवेशन की उत्तर-कथा

प्रफुल्ल कोलख्यान

अलका सरावगी के बहुचर्चित उपन्यास, 'कलि कथा: वाया बाइपास' पर चर्चा के प्रारंभ में ही यह याद कर लेना उचित होगा कि 20वीं सदी मनुष्य की मुक्ति के सपने की सदी रही है तो मुक्ति के उस सपने के लहुलुहान होने की भी सदी रही है। मुक्ति के इस सपने को लहुलुहान कर देने में 'उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण' के त्रैत की भूमिका है। 'उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण' का त्रैत उपनिवेशन की पूरी प्रक्रिया का दुहरा रहा है। इस दुहराव में बहुत कुछ नया भी है और इस नयेपन के कारण ही इसे नव-उपनिवेशन की प्रक्रिया भी कहा जाता है। संस्कृति में हमेशा नया शुभ का पर्याय बनकर आता रहा है। कहना न होगा कि यह धारणा खंडित हुई है, अब हर नया शुभ का पर्याय नहीं रहा। नया का शुभ का पर्याय न रहना मनुष्य की नैतिक संकाय और सांस्कृतिक चेतना को भी खंडित करता है। जाहिर है कि इस प्रक्रिया के आर्थिक और राजनीतिक आयाम तो हैं ही, इसके सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। 'कलि कथा: वाया बाइपास' हिंदी के उन कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है जिसने न सिर्फ इस आयाम को महसूस किया है बल्कि रचनात्मक स्तर पर उससे निपटने की सांस्कृतिक तैयारी

में पहलकारी भूमिका भी अदा की है। 'कलि कथा: वाया बाइपास' इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है कि यह उत्तर-औपनिवेशिक वातावरण में किशोर बाबू के माध्यम से नव-उपनिवेशन की आक्रामकता का प्रत्याख्यान वि-उपनिवेशन की उत्तर-कथा के माध्यम से करने की गुंजाइश बनाता है। लेकिन यह किशोर बाबू हैं कौन? किशोर बाबू कोई साधारण आदमी नहीं हैं। 'सत्तर साल पार करने के बाद भी दिमागी तौर पर किशोर बाबू जैसे असाधारण रूप से चौकन्ने व्यक्ति — जिनकी तुलना सिर्फ बंगाल के अस्सी-पार मुख्यमंत्री ज्योति बसु से ही की जा सकती है — का इस तरह गड़बड़ा जाना उनके जान-पहचानवालों के लिए एक सन्न कर जानेवाली सूचना थी।'

ज्योति बसु किसी एक व्यक्ति का नाम होकर नहीं, बल्कि मुक्ति-संघर्ष की संज्ञा बनकर महत्वपूर्ण है। किशोर बाबू सिर्फ ऐसे ज्योति बसु से तुलनीय हैं, इसलिए भी उनके माध्यम से यह गुंजाइश बनती है। और इसीलिए इस गुंजाइश में यह समझ बराबर बनी रहती है कि आजादी या मुक्ति की अवधारणा उतनी सरल नहीं है जितनी सरलता को आजादी के लिए किये गये राजनीतिक संघर्ष के दौरान जनता के विवेक का हिस्सा बना दिया जाता है। 'कलि कथा: वाया बाइपास' मुक्ति के बारे में रेखांकित करता है कि 'मुक्ति — इससे अधिक सारगर्भित शब्द शब्दकोश में दूसरा कौन होगा? ऐसा शब्द, जिसका मरते दम तक आदमी नए-नए अर्थ निकालता रहता है। प्रेम, वासना, लोभ, संपत्ति जैसे शब्द भी साथ छोड़ देते हैं, जिनसे सारे जीवन आदमी बंधा हुआ चलता है, तब भी मुक्ति का अर्थ उतना ही नया, उतना ही जरूरी बना रहता है। किशोर बाबू को लगता है कि आदमी की कई मुक्तियाँ हैं और एक मुक्ति यह भी जानने में है कि कोई आदमी पूरी तरह एक आदमी नहीं होता।'

वस्तुत:, 'आजादी' एक ऐसा सपना है जो मनुष्य की व्यक्ति और सामूहिक-सामाजिक की जातीय अस्मिता में नाना रूपों में बना रहता है। जब खतरा मुक्ति पर हो तब किसी भी रचनात्मक विमर्श के प्रस्थान बिंदु का विकास मुक्ति की विभिन्न अवधारणाओं की जटिलताओं के बीच से होना ही स्वाभाविक है। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि जब हम किसी विमर्श में 'आजादी' को विचार के नये प्रस्थान बिंदु और आधार के रूप में स्वीकार करते हैं, तो हमारे सामने कुछ बातें बिल्कुल स्पष्ट होती हैं। मसलन, 'आजादी' का उस विमर्श से गहरा संबंध है। 'आजादी' की अवधारणा जड़ नहीं होती है। समाज विकास के विभिन्न चरणों पर 'आजादी' की अवधारणा में नये आयाम जुड़ते चलते हैं। जाहिर है, कई पुराने आयाम निष्प्रभ होकर 'आजादी' की अवधारणाओं की जीवित नाभिकीयता से विच्युत हो जाते हैं, तो कुछ नये

आयाम 'आजादी' की नाभिकीयता में जगह पाने के लिए मचलते रहते हैं। समाज और समुदाय में कुछ लोग 'आजादी' के पुराने और निष्प्रभ आयाम को उसकी नाभिकीयता में सक्रिय बनाये रखने के लिए संघर्ष करते हैं। ऐसे लोग, अंतिम विश्लेषण में परंपरावादी या प्रणतिशील कहलाते हैं। कुछ लोग 'आजादी' की अवधारणा की नाभिकीयता से ऐसे पुराने निष्प्रभ आयाम को विच्युत करने और नये आयाम के लिए जगह बनाने के लिए संघर्ष करते हैं। ऐसे लोग आधुनिकतावादी या प्रगतिशील कहलाते हैं। कहना न होगा कि प्रणतिशीलता और प्रगतिशीलता के बीच सदैव संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष का ऊपरी एवं बाहरी रूप-तत्त्व राजनीतिक संघर्ष में प्रकट होता है, तो इस संघर्ष का आभ्यांतरिक और केंद्रीय रुप-तत्त्व सांस्कृतिक संघर्ष में स्वभावत: सन्निहित रहता है। राजनीति और सांस्कृति के अंतस्संबंध की प्राणशिरा का जुड़ाव मनुष्य की 'आजादी' की जन्मजात आकांक्षा से होता है। प्रणतिशील लोगों के मन पर स्मृतियों का बड़ा बोझ होता है। ऐसे लोग इन स्मृतियों को ही इतिहास मानते हैं और प्राणरस भी वहीं से पाते हैं। प्रगतिशील लोगों के मन में भविष्य का तीव्र आकर्षण काम करता है। इस आकर्षण के कारण इनका इतिहास भविष्योन्मुखी होता है और ये अपना प्राणरस भी इसी भविष्योन्मुखी इतिहास से पाते हैं। तात्पर्य यह कि प्रणतिशील और प्रगतिशील के बीच के कई द्वंद्वों में से एक द्वंद्व को इतिहास और भविष्य के द्वंद्व के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। विमर्श में कठिनाई अतियों पर जाकर खड़े हो जानेवाले लोगों के कारण होती है। जो जितना अधिक प्रणतिशील होता है, वह इतिहास में उतनी दूर तक पीछे चलकर वहीं से आवाज लगाता है। उसी तरह जो जितना प्रगतिशील होता है, वह भविष्य में उतना ही आगे बढ़कर आवाज लगाता है। ये दोनों अपनी-अपनी जगह से निष्कर्ष निकालते रहते हैं। जो आज का भविष्य है, वह कल का अतीत हो जाता है। लेकिन सीधे नहीं! वर्तमान होने के बाद ही भविष्य अतीत बनता है। प्रणतिशील लोग लगभग भूल ही जाते हैं कि जो आज भविष्य है, वह कल अतीत हो जाता है। अतीत कभी भविष्य नहीं बनता है। यह एक दिलचस्प बात है कि इसीलिए प्रणतिशीलता हमेशा प्रगतिशीलता के अनुसरण के लिए बाध्य होती है। एक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने पर विमर्श को सुदूर अतीत या भविष्य में ले जाने की छूट नहीं रहती है। यथार्थवादी दृष्टि के लिए ज्योति का मुख्य स्रोत वर्तमान ही होता है। 'कलि कथा: वाया बाइपास' इस भूत-वर्तमान-भविष्य के कालविभाजन को ही अक्रिमित कर जाता है, विधाओं के व्यवधान को अतिक्रमित करने का साहित्यिक साहस भी यहीं से ऊपजता है। इतिहास को किसी पाठ में नहीं जीवन के सतत प्रवाह में उपलब्घ और उपस्थित करने का प्रयास करता है। इतिहास हमारे बाहर नहीं हमारे अंदर, हमारे रक्त में घुला-मिला होता है। 'कलि कथा: वाया बाइपास' इतिहास के प्रति एक वैकल्पिक नजरिया का अवलंबन करता है। इतिहास का शास्त्र भले ही इस वैकल्पिक नजरिये को इतिहास में 'बाइपास' की तरह देखे मगर जब जोर-शोर से इतिहास की मृत्यु की घोषणाएँ की जा रही हों तब अंतिम नहीं, बल्कि एक और अरण्य के रूप में

आदमी के पास जो तर्क बचता है उसे 'कलि कथा : वाया बाइपास' के इस संदर्भ से देखा जा सकता है: 'इस संसार में बीता हुआ कुछ भी खोता नहीं है। कैसे खो सकता है जब हम हैं अभी तक? ज्यादा-से-ज्यादा हमारे अंदर भीतर कहीं दूर पुराने उजड़े शहरों की तरह ऊपर की परतों की तह में दफन हो जाता है— वे सारे शब्द जो हमने सुने, जो हमने बोले, वे सारे सुख-दुख जो हमने झेले। बीती हुई एक घड़ी भी कभी मरती नहीं। वह वहीं अंदर दुबकी रहती है और कहते हैं कि जिस समय आदमी मरता है वह एक फिल्म की रील की तरह अपनी जी हुई जिंदगी को फिर बचपन से अभी तक पूरी-पूरी देखता है। लेकिन रिलीज हुई फिल्म की तरह वह उसमें कुछ बदल नहीं सकता।'

इतिहास गवाह है कि 'बाह्य औपनिवेशिक वातावरण' के सवाल के हल हो जाने के बाद 'आंतरिक औपनिवेशिक वातारण' से मुक्ति का सवाल गौण बनता चला गया। इस सांस्कृतिक सवाल को संवैधानिक और प्रशासनिक उपचारों से सलटाने की चतुराई अपना ली गई। जो 'आजादी' आधुनिक भारतीय जीवन में समता, समरसता, सामाजिक बहुलात्मकता की रक्षा की आधरभूमि बनकर आई थी, उस आधारभूमि में इससे भयानक कटाव हुआ। इस आधारभूमि के एक दूसरे कटाव की ओर भी विशेष ध्यान देना जरूरी है। 'आजादी' देशविभाजन की क्रूरताओं को लेकर भी आई। 'कलि कथा : वाया बाइपास' में एक स्वामीजी हैं, इनके बारे में कहा गया है कि, 'किसी तरह की कोई धार्मिक अवस्था स्वामीजी में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। एक '$' लिखे हुए चित्र को छोड़कर उन्होंने कहीं कोई मूर्त्ति नहीं रखी है। स्वामीजी कहते हैं: "भरतवर्ष की खासियत यह है कि यहाँ कुछ भी त्यागा नहीं जाता। यह भी सत्य है, यह भी सत्य है और वह भी सत्य है। इसलिए इतना कबाड़ भर गया हमारे धर्म में।"

ऐसे विचार समद्ध स्वामियों के रहते हुए भी देशविभाजन की क्रूरताओं का प्रसार देश की सामाजिकताओं के अंत:विभाजन तक हो गया। यह सिर्फ साठ साल पुरानी बात नहीं है। यह विभाजन अतीत ही नहीं है। कुछ-कुछ वर्तमान भी है। बाबरी मस्जिद की शहादत और गुजरात के दंगे तो इस विभाजन के विस्फोट हैं। इसके अलावे भी अंतर्विभाजन के दर्द का सच आज भी स्थगित नहीं है। 'कलि कथा: वाया बाइपास' का एक प्रसंग की ओर संकेत किया जा सकता है 'अक्तूबर में नोआखाली के दंगे के समय उनके मकान मालिक के रिश्तेदार पूर्वी बंगाल से रातों-रात सिर्फ अपना कीमती सामान लेकर चले आये थे और उनकी हालत देखकर भी किशोर बाबू के अंदर कुछ नहीं हुआ था।

कलकत्ता शहर के हिंदू और मुस्लिम इलाके बीच में जालीदार और कबाड़ रख 'नो मैनस लैंड' बनाकर 'हिंदुस्तान' और 'पाकिस्तान' बन गए थे।' क्या यह बात अपने किसी रूप में आज भी सच नहीं है? इसकी रचनात्मक पड़ताल कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' में देखने को मिलती है और इसका एक और रचनात्मक बरताव दूधनाथ सिंह के 'आखिरी कलाम' में भी हासिल है। 'आजादी' का स्वप्न विकलांग हो गया। लेकिन 'आजादी' का संघर्ष कभी रुकता नहीं है! उसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति जरूर अदृश्य हो गई। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तो अपने स्वभाव से ही अदृश्य होती है। इस अदृश्य को दृश्य बनाना आलोचना का दायित्व है। खासकर जब आलोचना अपने किसी विमर्श के प्रस्थान-बिंदु में 'आजादी' को मुख्य संदर्भ के रूप में आत्मार्पित करने के संकल्प के साथ आगे बढ़ना चाहती हो। इन साठ सालों में भारतीय जीवन के भीतर से विकसित बहुआयामी राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक यथार्थ से टकराने के बाद उन बहुस्तरीय राष्ट्रीय सपनों का क्या हुआ? गहरे सामाजिक स्वप्न और तीखे राजनीतिक संघर्ष के घात-प्रतिघात के बीच विकसित नये जीवन-बोध की गहन वैयक्तिक एवं सामाजिक संवेदना के सहमेल में हिंदी साहित्य के सातत्य को परखने की जरूरत है। इस जरूरत का एक सिरा 'कलि कथा: वाया बाइपास' के अंतर्पाठ से भी निकलता है।

प्रणतिशीलता

और प्रगतिशीलता के बीच सदैव चलते रहनेवाला यह संघर्ष 'आजादी' का ही संघर्ष होता है। जाहिर है, समाज में 'आजादी' के संदर्भों को नये सिरे से पखारने और परखने की कोशिश जारी रहती है। इस तरह, किसी-न-किसी रूप में 'आजादी' का संघर्ष सदैव चलता रहता है। 'आजादी' के संघर्ष का आभ्यांतरिक और केंद्रीय रुप-तत्त्व सांस्कृतिक संघर्ष में अभिव्यक्त होता है। साहित्य एक सांस्कृतिक उपकरण भी है। इसलिए,'आजादी' के संघर्ष के आभ्यांतरिक और केंद्रीय रुप-तत्त्व की अभिव्यक्ति साहित्य में भी होती है। संस्कृति और राजनीति में अंत:स्संबंध होने के कारण आभ्यांतरिक और केंद्रीय रुप-तत्त्व की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के साथ ही आजादी के इस संघर्ष की ऊपरी एवं बाहरी रूप-तत्त्व की राजनीतिक अभिव्यक्ति भी साहित्य में होती है। हिंदी साहित्य में यह अभिव्यक्ति किस तरह हुई और हो रही है? इसे समझने की छोटी-सी कोशिश 'कलि कथा: वाया बाइपास' के पाठ से भी की जा सकती है। बाह्य औपनिवेशिक वातावरण के अंदर और उससे मुक्ति के संघर्ष के बीच आधुनिक भारत का गठन हुआ। औपनिवेशिकता का महीन तंतुजाल ऐसा होता है कि उसके अन्वयों और अवयवों को अलग से पहचानना भी मुश्किल होता है। इसका एक प्रभाव यह है कि भारत में 'बाह्य औपनिवेशिक वातावरण' से मुक्ति और 'आजादी' एक दूसरे के

समव्यापी पर्याय बनते चले गये। यद्यपि 'आंतरिक औपनिवेशिक वातारण' से मुक्ति का सवाल भी बीच-बीच में सिर उठाता रहा, इस संदर्भ में कुछ सक्रियता भी उस दौर में देखने को मिलती है लेकिन इस सक्रियता को अनिवार्यत: 'बाह्य औपनिवेशिक वातावरण' से मुक्ति के सवाल से नत्थी करके ही समझा गया। इस प्रसंग में, महात्मा गाँधी और डॉ. आंबेदकर के संदर्भ का उल्लेख भर कर देना पर्याप्त है। उस समय यह मान्यता बनी कि एक बार अगर 'बाह्य औपनिवेशिक वातावरण' के सवाल को हल कर लिया गया तो 'आंतरिक औपनिवेशिक वातारण' से मुक्ति के सवाल को हल कर लेना आसान हो जायेगा। कुछ लोग तो यह मानते थे कि 'आंतरिक औपनिवेशिक वातारण' से मुक्ति का कोई सवाल है ही नहीं और अगर हो भी तो यह स्वत: हल हो जायेगा! कुछ लोग ऐसे भी थे जो इसे अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता ही मानते थे। इसको लेकर महात्मा गँधी के अंतर्मन में भी कम उलझनें नहीं थीं। जो हो हमारे स्वतंत्रता संघर्ष में एक बाइपास निकल आया था। 'कलि कथा : वाया बाइपास' का एक संदर्भ उल्लेखनीय है:

> "तुम आ गए शांतनु ? मैंने तो सोचा ही नहीं था कि तुम्हें आज की बात याद होगी। फिर भी मैं चला आया कि जिंदा हूँ तो अपनी बात निभा दूं " — किशोर बाबू ने कहा।
>
> "मैं तुम्हें बाइपास करके कैसे आगे की जिंदगी की तरफ बढ़ता किशोर ? जब हमारी दुनिया के सारे बाइपास के रास्ते बंद हो गए, ताक फिर मेरे पास यहाँ आने के सिवाय और क्या चारा था?" — शांतनु ने कहा।
>
> किशोर बाबू को उसकी बात समझ में नहीं आई। शांतनु हँसा। वही चिरपरिचित हँसी। फिर वह किशोर को वैसे ही अपनी बात समझाने लगा जैसे पहले हमेशा समझाया करता था।
>
> "देखो, एक रास्ता जाम होता था, तो हम दूसरा रास्ता बना लेते थे जो उस रास्ते के दोनों सिरों से जुड़ता था। ज्यादा ट्रैफिक होती, तो हम वन-वे रास्ते बना देते थे। हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की। हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूंढ़ते रहे। पर अब कोई बाइपास काम नहीं कर सकता।"

जिस संघर्ष के सामने आज का मनुष्य खड़ा है उस संघर्ष में अब शायद किसी बाइपास के लिए कोई जगह नहीं बची है। जगह बची भी हो तो उसके बरताव से बचने के संदेश को सांस्कृतिक संदर्भ में प्रस्तुत किया जाना अलका सरावगी के उपन्यास 'कलि कथा: वाया बाइपास' को महत्वपूर्ण बनाता है। आज जब सांस्कृतिक मुक्ति की ओर सबका ध्यान जा रहा है तब उस मुक्ति की करुण आकांक्षा के रूप में भी 'कलि कथा: वाया बाइपास' का अपना महत्व है। इस करुण आकांक्षा का विधातीत निवेश ही कलिकथा: वाया बाइपास को उत्तर-औपनिवेशिक वातावरण में वि-उपनिवेशन की उत्तर-कथा बनाती है।

संदर्भः **कलिकथा - वाया बाइपासः अलका सरावगी**

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान